मेहनतकशों का पैग़ाम मेहनतकशों के नाम

मज़दूर मोर्चा

पाक्षिक

Email : mazdoormorcha@yahoo.co.in
www.mazdoormorcha.com

Postal Reg. No. L/H.R/FBD/463-06 /R.N.I. No. 66400/97

मैट्रो अस्पताल: श्रमिकों को डराने पुलिस भी उतरी धर्मांधता फ़ैलाना ही कुछ लोग़ों का रोजगार है 3

गलतियों की आदी-मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी भावी कार्यक्रम की विवेचना 5

कत्ल या करामात हाशिमपुरा के अन्याय में सभी दोषी 6

ईएसआईसी मेडिकल कॉलेज बेचने को मोदी सरकार, तलाश रही है ग्राहक 8

वर्ष 28 अंक 10 फरीदाबाद, बुधवार, 1-15 अप्रैल 2015 फोन : - 9999595632 2 ₹

गुड़गांव-झज्जर में सजी 'सेज'

रिलायंस को किसानों की लूट की छूट

नौ सौ चूहे भी खा लिये और बिल्ली हाज़ी भी कहलाना चाहती है। कार्पोरेटों के मतलब से भूमि अधिग्रहण विधोयक/अध्यादेश थोपने वाली मोदी सरकार खुद को किसानपरस्त बताते नहीं थकती। पर सच्चाई यह है कि किसान के आगे टुकड़ा फ़ेंक कर या फ़िर उसे लाठी-जेल दिखा कर ज़मीन से बेदखल किये जाने का सिलसिला पूर्ववर्ती सरकारों से भी बढ-चढ कर मोदी-राज में चालू है। हरियाणा के संदर्भ में भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के दस वर्ष के कार्यकाल में अनिल अम्बानी को लूट का खुला लाइसेंस दिया गया था। उसी का एक विवरण प्रस्तुत है।

मज़दूर मोर्चा, फरीदाबाद ब्यूरो

मनमोहन सिंह की कांग्रेस सरकार ने स्पेशल इक्नॉमिक ज़ोन (सेज) के नाम से किसानों की उपजाऊ ज़मीन हड़प कर अम्बानियों और टाटाओं को सौंपने की एक स्कीम शुरू की थी। इसके तहत उनको एक क्षेत्र विशेष में जहां वे यह स्कीम शुरू करना चाहते थे, उसमें कुछ ज़मीन खरीदनी थी। स्कीम में पास हुए कुल रकबे का लगभग पचहत्तर प्रतिशत उस कंपनी को खुद किसानों से खरीदना था और फ़िर बाकी सरकार ने

किसानों से औने-पौने दामों में छीन कर इनको देनी थी। कहने को इस स्कीम का मकसद इस इलाके में नये कारखाने लगवा कर लोगों को उनमें रोजगार देना था। इसके लिये इन क्षेत्रों में कारखाना लगाने पर टैक्स में भी भारी रियायतों की घोषणा की गई थी। लेकिन असल मकसद प्रॉपर्टी डीलरी से ज्यादा कुछ भी नहीं था। ये उन दिनों की बात है जब ज़मीन के दाम घण्टों के हिसाब से बढ रहे थे। इसलिये किसानों को ज़मीन अधिग्रहण होने का डर दिखाकर सेज के औने-पौने दामों में ज़मीन खरीदकर बाहर की कम्पनियों को उन्हें ऊंची कीमत पर बेचना एक बेहद फ़ायदे का सौदा था। इसीलिये तुर्त-फुर्त सैंकड़ों 'सेज' विकसित करने की शुरूआत हो गई। लेकिन तभी बदकिस्मती से विश्व में आई भयंकर मंदी के कारण प्रापर्टी डीलरी का यह धन्धा खटाई में पड़ गया। यहां तक कि कुछ कंपनियों ने तो अपनी पास करी कराई स्कीमें भी रद्द करा लीं। लेकिन लोग़ों को धोखेबाज़ी से लूटने में माहिर रिलायन्स ने गुड़गांव-झज्जर के अपने 'सेज' में किसानों से जमीन 'खरीदनी' जारी रखी।

अभी तक रिलायंस हालॉकि उतनी ज़मीन नहीं खरीद पाया है जिसके बाद बाकी की यानी उसकी जमीनों के टुकड़े के बीच में पड़ने वाली ज़मीन सरकार किसानों से 'एक्वायर' करके उसको दे देती। लेकिन रिलायंस ने इसी बीच अपनी प्रॉपर्टी डीलरी की दुकान शुरू कर दी है, जो बिल्कुल गैर क़ानूनी है

दूसरी तरफ हुड्डा सरकार के चले जाने और नये मुख्यमंत्री खट्टर से अभी सैटिंग न हो पाने से भी उनकी मुश्किलें बढ गयी हैं। लिहाज़ा छोटे-छोटे टुकड़ों में दूर-दूर पड़ी अपनी ज़मीनों को इकट्ठा करने की कोशिश शुरू की गई ताकि इस तरह एक बड़ा ज़मीन का टुकड़ा बन जाने पर उसको ढंग से बेचा जा सके। लेकिन जिन किसानों की ज़मीन बीच में थी उन्होंने बेचने से मना कर दिया। इसलिये एक नया तरीका अपनाया गया।

पता चला है कि जहां ज़मीन का बंटवारा नहीं हुआ था और सरकारी रिकार्ड में ज़मीन बहुतेरे किसानों के नाम थी वहां झूठे दस्तखत करके आपसी सहमति से ज़मीन का बंटवारा दिखा दिया गया और रिलायंस ने अपनी ज़मीन एक जगह करवा ली और किसानों की अलग-अलग कर दी। उदाहरण के तौर पर तीन भाइयों की छ: एकड़ ज़मीन थी जिसका उनमें बंटवारा नहीं हुआ था। उनमें से एक भाई जिसका एक एकड़ एक तरफ़ था तो दूसरा एकड़ दोनों भाइयों की जमीन के दूसरी तरफ़, उसने रिलायंस को अपनी जमीन बेच दी। जब बाकी के दोनों भाइयों ने जमीन रिलायंस को नहीं बेची तो रिलायंस ने तीसरे भाई से खरीदी दो एकड़ ज़मीन इकट्ठी करने के लिये इस साझी ज़मीन का तहसीलदार के यहां बंटवारा चढवा दिया। इसके लिये उन दोनों भाइयों के झूठे दस्तखत कर दिये गये। इससे उनकी ज़मीन अलग-अलग हो गई।

लोगों को इस धोखाधड़ी का पता तब चला जब रिलायंस ने इस तरह इकट्ठी की गई ज़मीन की तारों से घेरेबन्दी की। इस पर किसानों ने तारों की बाड़ को तोड़कर दुबारा अपनी ज़मीन जोतनी बोनी शुरू कर दी। साथ ही साथ रिलायंस के खिलाफ़ मुकदमें भी दर्ज करा दिये।

वैसे देखा जाये तो यह सीधा-सीधा आपराधिक धोखा धड़ी का केस बनता है और इसके लिये रिलायंस वालों और तहसीलदार आदि को गिरफ़्तार करके उनके ऊपर फ़ौजदारी का मुकदमा चलाया जाना चाहिये। लेकिन अम्बानियों के आगे बेचारे किसानों की कौन सुनता! लिहाज़ा उनको कोर्ट कचहरियों के चक्कर काटने पड़ रहे हैं। बेशर्मी और सीनाजोरी की हद यह है कि बादली के पास के सौंधी व आकूपुर आदि गांवों के एकाध नहीं बल्कि अनेकों किसानों के साथ यह धोखाधड़ी की गयी है पर कोई सुनवाई नहीं। दूसरी तरफ़ 56 इन्च के सीने वाला प्रधानमंत्री बेशर्मी से किसानों के हिमायती होने का दम भरता घूम रहा है। और नये भूमि अधिग्रहण बिल द्वारा किसानों की और ज़मीन छीनकर अम्बानियों/अडानियों को देने की तैयारी में जुटा है।

किसानों के हक में भूमि अधिग्रहण ?

यदि भूमि अधिग्रहण वास्तव में किसान-हित में किया जाता तो उसके प्रावधान एवं शर्तें बिल्कुल अलग तरह के होते। तब ज़मीनें बजाय किसानों से छीनने के लीज़ पर ली जातीं। तब किसान को अपनी पुश्तैनी किसानी से वंचित करने से पहले उसे और उसके परिवार को समुचित प्रशिक्षण देकर नये रोज़गार के लिये तैयार किया जाता। यही नहीं, तब विकास का मतलब सिर्फ़ उद्योगों या व्यापारिक केन्द्रों की मुनाफ़ाखोर बाढ ही न होकर 'किसानी' को लाभप्रद बनाना भी होता।

भला कौन किसान है जो नहीं चाहता कि उसे अच्छी सड़कें व स्कूल-अस्पताल आदि मिलें; स्वच्छ पेयजल, बिजली और साफ़ वातावरण का लाभ उस तक भी पहुंचे। बस वह इतना ही चाहता है कि यह सब उसके नज़रिये से हो न कि टाटा, अम्बानी, अडाणी, जिंदल जैसे लुटेरों के हिसाब से।

ख़बर दार

हाशिमपुरा के असली कातिल!

31 अक्टूबर 1984 इन्दिरा गांधी की हत्या की पृष्ठभूमि में हुए सिख नरसंहार ने कांग्रेस के हाथों में हिन्दुत्व का ट्रम्प कार्ड पकड़ा दिया था। नौसिखिया प्रधानमंत्री राजीव गांधी के नेतृत्व में इसी कार्ड को मुसलमानों के खिलाफ़ भी खेला गया। नतीजे में अयोध्या गर्म हुई, जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे हुए और भागलपुर महीनों जला। मुकाबले में भाजपा ने, जो दो सांसदों तक सीमित रह गई थी, पूरी ताकत से साम्प्रदायिक घृणा को शिला-पूजन के देशव्यापी अभियान से जम कर हवा दी। हाशिमपुरा में पी ए सी द्वारा हिरासत में लेकर 42 मुसलमानों की हत्या को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिये।

'हिन्दुत्व' का एजेंडा हथियाने की थी कवायद

भारतीय चुनावी राजनीति में 80 का दशक 'हिन्दुत्व' की होड़ का दशक था। एक ओर इस ऐजेंडे के पुराने दावेदार के रूप में भाजपा थी तो दूसरी ओर थी नयी दावेदारी के साथ इसे झपटने को आतुर कांग्रेस पार्टी। मेरठ के मोहल्ले हाशिमपुरा के 42 मुसलमानों को 22-23 मई 1987 की रात अपनी जान से इस होड़ की कीमत अदा करनी पड़ी। पी ए सी के 19 कर्मियों पर चला उनकी हत्या का मुकदमा इसी 22 मार्च को 28 साल के बाद सबूतों के अभाव में बरी होकर समाप्त हुआ।

सबूतों के अभाव का क्या मतलब? सारे मोहल्ले के सामने सेना और पुलिस की उपस्थिति में पी ए सी ने उन लोग़ों को सरकारी ट्रक में अगुआ किया था। ट्रक को पड़ोसी गाज़ियाबाद ज़िले में ले जाकर गंग नहर के किनारे दो अलग-अलग स्थानों पर सरकारी राइफ़लों से मौत के घाट उतार दिया गया। गाज़ियाबाद पुलिस ने दो मुकदमें इस सिलसिले में उन 5 चश्मदीदों के बयान पर दर्ज किये जो उक्त गोलीबारी की आपाधापी में किसी तरह बच गये थे।

देखा जाय तो यह एक पुख्ता केस था। सरकारी जवान, सरकारी ट्रक, सरकारी राइफ़लें, सरकारी गोलियां, इन सभी को जोड़ पाना आसानी से हो सकता था। पर मुकदमा दर्ज होने के चन्द घन्टों के भीतर ही यू पी के तत्कालीन मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह के आदेश से केस ज़िला पुलिस से लेकर पुलिस मुख्यालय में सी आई डी की क्राइम ब्रांच को दे दिया गया जानकारों का मानना है कि ऐसा तत्कालीन केन्द्र सरकार के आन्तरिक सुरक्षा मंत्री पी चिदम्बरम के फ़ोन पर हुआ। जाहिर है चिदम्बरम की पीठ पर उनके आका तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी की राजनीतिक प्राथमिकता का दबाव था।

यहां से इस हत्याकांड की तफ़्तीश हिन्दुत्व के ऐजेंडे के अनुसार चलाई गई। अव्वल तो सबूत जुटाने में किसी की दिलचस्पी नहीं थी। जो सबूत थे भी उन्हें नष्ट किया गया। अन्त में 28 साल की ड्रामेबाज़ी के बाद भी जब चश्मदीद गवाह नहीं बैठे तो उनकी गवाही को अविश्वसनीय करार देकर अदालत ने न्याय का पटाक्षेप कर दिया। यह मुकदमा खिसक-खिसक कर रेंगा भी इस दम पर

शेष पेज दो पर

कोर्ट ने छीना जाट-आरक्षण का झुनझुना

ऐन लोकसभा चुनाव से पहले जाटों के हाथ में आरक्षण का झुनझुना पकड़ाने वाली मनमोहन सरकार को जाटों ने फ़िर भी वोट नहीं दिया था। वैसे भी इस झुनझुने से जाट समुदाय के लाखों बेरोज़गार नौजवानों को कुछ खास मिलने भी नहीं जा रहा था। 17 मार्च को सुप्रीम कोर्ट ने जाटों को अन्य पिछड़ा वर्ग (ओ बी सी) आरक्षण कोटे में शामिल करने की अधिसूचना निरस्त कर दी। इस तरह यह झुनझुना भी जाटों के हाथ से निकल गया है।

सुप्रीम कोर्ट का फ़ैसला इस आधार पर दिया गया है कि जाट ओ बी सी सूचि में शामिल होने के हक़दार नहीं हैं क्योंकि वे सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के नहीं हैं। फ़िलहाल इस मुद्दे को लेकर विभिन्न राजनीतिक दलों में अपनी रोटियां सेकने की होड़ लग गयी हैं। तमाम जाट सांसदों की ओर से नया आरक्षण क़ानून लाकर जाटों का आरक्षण बहाल करने का ढकोसला एक सम्मिलित मांग के रूप में रखा गया है। साथ ही जाट समुदाय में इस मामले पर चंदा उगाही करनेवाले भी पुन: सक्रिय हो उठे हैं। उनकी ओर से सर्वखाप पंचायत से लेकर धरने प्रदर्शन का सिलसिला शुरू करने की तैयारियां हैं।

सच्चाई यह है कि इस झुनझुने को जितना भी बजा लिया जाय, जाट समुदाय के लिये इस से कर्णप्रिय संगीत नहीं ही फूटेगा। राजनीतिक रूप से भी उनका साथ देने का दावा करने वाले बहुत दूर तक दोस्ती नहीं निभा पायेंगे। मुख्य कारण यह है कि जाट-आरक्षण ओ बी सी में शामिल अन्य समुदायों की कीमत पर ही मिला था। क्योंकि आरक्षित कोटा तो एक तय सीमा से आगे बढाया नहीं जा सकता। जाटों को आरक्षण देने से दूसरे ओ बी सी समुदायों के ठेकेदार इस तर्क को आगे बढ़ाने लगते हैं कि उनके समुदाय वालों की सीटें कट गयीं। यही वजह रही कि जाट-आरक्षण लागू करने पर कांग्रेस को लोकसभा चुनाव में उल्टे नुक्सान ही उठाना पड़ा।

सवाल है कि जाट समुदाय कब तक ऐसे झुनझुनों से बहलता रहेगा। यदि आरक्षण की बदौलत कुछ सौ अतिरिक्त लोग़ों को हर वर्ष सरकारी नौकरी मिल भी जाय तो इस से समुदाय के लाखों बेरोज़गारों का भविष्य तो बनने से रहा। मुख्यत: कृषि आधारित यह समुदाय तभी खुशहाली की हवा में जी पायेगा जब वह खेती को लाभप्रद रोज़गार का माध्यम बनाने के लिये सरकारों को मजबूर करे। मूल लड़ाई रोज़गार की है; इसे आरक्षण के हथियार से नहीं लड़ा जा सकता। इस मामले में हर समुदाय का एक जैसा दर्द है जो आरक्षण के झुनझुने से नहीं मिटाया जा सकता।